

जीव स्वयं से दुःखी, कर्म से नहीं

अहो ! भगवान आत्मा अमृत का सागर है। पुण्य-पाप का भाव द्रव्य-गुण में नहीं है। द्रव्य अर्थात् शक्तिवान अखण्ड वस्तु और गुण अर्थात् शक्ति। अहाहा...! अन्तर में विराजमान भगवान आत्मा स्वयं सुख के रस के स्वाद से भरा अनन्त गुणों का भण्डार है। ऐसा अमृत का नाथ भगवान मृतक कलेवर में मूर्छित हो रहा है। अरे भाई ! जरा सुन तो सही, यह देह तो परमाणुओं की बनी वस्तु है। यही परमाणु जब विच्छु के डंक या सर्प के जहर के रूप में थे तब तुझे अच्छे नहीं लगते थे, जब वही परमाणु तेरे शरीररूप परिणामित हो गए तो तुझे अच्छे लगने लगे हैं। ये मेरे हैं, मैं इनसे रमण करूँ - इत्यादि नाना प्रकार के एकत्व-ममत्वरूप परिणाम होने लगे हैं। इनमें तेरी इष्टबुद्धि हो गई है, इनमें मूर्छित हो गया है। आचार्य कहते हैं कि भाई ! तुझे यह क्या हो गया है ? तुझे यह मिथ्यात्व रोग कहाँ से लग गया है ? लगा कहीं से नहीं है, इसे तो तूने ही अपने अज्ञान से उत्पन्न कर लिया है। यह तेरा ही अपराध है, किसी कर्म के कारण हुआ हो - ऐसा नहीं है।

यहाँ मुख्यतया तीन बातें कहीं हैं -

1. जीव अपने राग-द्वेष-मोह के परिणाम स्वयं अपने कारण से उत्पन्न करता है, वे किसी कर्म के कारण नहीं होते।
2. उस काल में मिथ्यात्व आदि अजीव पुद्गल कर्म जो उदयरूप से परिणामते हैं, वे भी उनकी अपनी योग्यता से परिणामते हैं, अन्य किसी कारण से नहीं।
3. तथा उस मिथ्यात्व आदि अजीव पुद्गल के परिणाम को आस्रव कहने का कारण बताते हुए कहते हैं कि वे नवीन कर्मों के आने में निमित्त होते हैं; अतः निमित्त की अपेक्षा उन जड़कर्म को भी व्यवहार से आस्रव कहा जाता है।

यहाँ वस्तु की स्वतंत्रता का सूचक सिद्धान्त प्रतिपादित करते हुए आचार्य कहते हैं कि जीव ने स्वयं अपनी भूल से दुःख उत्पन्न कर रखा है, जैसे के कारण या कर्म के कारण दुःख हुआ हो - ऐसा नहीं है।

कर्म आस्रवण के निमित्तपने का निमित्त राग-द्वेष-मोह है, अज्ञानमय आत्मपरिणाम है। जीव को जो राग-द्वेष-मोह का परिणाम होता है, वह पर के कारण नहीं होता; बल्कि अपनी स्वयं की भूल से या अज्ञानभाव से अपने कारण होता है अर्थात् वह अपने कारण से हुआ अज्ञानमय आत्मपरिणाम है। अहा ! मिथ्यात्व व शुभाशुभ भाव, पुण्य-पाप के भाव - सभी अज्ञानमय आत्मपरिणाम हैं। परद्रव्य का इनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। परद्रव्य परद्रव्य में है और आत्मा स्वयं अपने विकार में या अविकारी स्वभाव में रमता है। उसका पर के साथ कोई संबन्ध नहीं है। गाथा 76 में तो ऐसा कहा है कि - पाँच इन्द्रियों के विषय आत्मा में राग-द्वेष उत्पन्न करने में असमर्थ हैं - अकिंचित्कर है। जिस तरह कर्म राग-द्वेष कराने में असमर्थ हैं; उसीतरह नोकर्म भी राग-द्वेष कराने में अकिंचित्कर हैं।

प्रवचनरत्नाकर भाग-5, पृष्ठ -226-227

वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का, घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : 20

238

अंक : 10

द्रव्यसंग्रह पद्यानुवाद

- डॉ. हुकमचन्द भारिल्लु

षड्द्रव्य-पंचास्तिकाय अधिकार

कहे जीव अजीव जिन जिनवर वृषभ ने लोक में।
वे वंघ सुरपति वृन्द मैं बंदन करूँ कर जोरकर ॥१॥
जीव कर्ता भोक्ता अर अमूर्तिक उपयोगमय।
अर सिद्ध भवगत देहमित निजभाव से ही ऊर्ध्वगत ॥२॥
जो सदा धारें श्वाँस इन्द्रिय आयु बल व्यवहार से।
वे जीव निश्चयजीव वे जिनके रहे नित चेतना ॥३॥
उपयोग दो हैं ज्ञान-दर्शन चार दर्शन जानिये।
चक्षु अचक्षु अवधि केवल नाम से पहिचानिये ॥४॥
ज्ञान आठ मतिश्रुतावधि ज्ञान भी कुज्ञान भी।
मनःपर्यय और केवल प्रत्यक्ष और परोक्ष भी ॥५॥
सामान्यतः चऊ-आठ दर्शन-ज्ञान जिय लक्षण कहे।
व्यवहार से पर शुद्धनय से शुद्धदर्शन-ज्ञान हैं ॥६॥
स्पर्श रस गंध वर्ण जिय में नहीं हैं परमार्थ से।
अतः जीव अमूर्त मूर्तिक बंध से व्यवहार से ॥७॥
चिद्कर्मकर्ता नियत से द्रवकर्म का व्यवहार से।
शुधभाव का कर्ता कहा है आत्मा परमार्थ से ॥८॥
कर्मफल सुख-दुःख भोगे जीव नयव्यवहार से।
किन्तु चेतनभाव को भोगे सदा परमार्थ से ॥९॥

देह से भोगोपभोग चाहना व्यर्थ है

पूज्यपाद आचार्य देवनिस्वामी के प्रसिद्ध ग्रन्थ इष्टोपदेश के 18वें श्लोक पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल श्लोक इसप्रकार है -

भवन्ति प्राप्य यत्संगमशुचीनि शुचीन्यपि।

स कायः संततापायस्तदर्थं प्रार्थना वृथा॥18॥

जिसके सम्बन्ध को पाकर पवित्र पदार्थ भी अपवित्र हो जाते हैं, वह शरीर हमेशा आपदाओं, उपद्रवों, विघ्नों, विनाशों, झंझटों सहित है; अतः उससे भोगोपभोग चाहना व्यर्थ ही है।

01(गतांक से आगे)

इस जीव को अनन्तकाल से कीमती मनुष्य देह मिली है; परन्तु उसने इस जड़ के भरोसे ही सारा समय नष्ट कर दिया। प्रभु ! यदि तू आत्मा में एकाग्रता करे तो तुझे सिद्ध जैसा आनन्द आयेगा। तू अमूर्त आनन्द का साँचा है, उसमें से अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट होता है। यहाँ मुनिराज शरीर और आत्मा का स्वरूप बताकर दोनों को जुदा-जुदा बताते हैं। शरीर के प्रति द्वेष करवाने का आशय नहीं है। जैसा दोनों का स्वरूप है, वैसा प्रकट करते हैं। शरीर का स्वरूप कैसा है, वैसा विचार कर !

जुदे-जुदे वर्तन में हाड़-मांस, खून-पीप आदि निकालो, कितना ग्लानिकारक है? उसका ही शरीर बना हुआ है। जरा आत्मा का भेदज्ञान कर, स्वरूप तो विचारो ! एक तरफ ज्ञान, एकतरफ शांति, आनन्द, स्वच्छत्त्व, विभुत्व, प्रकाश आदि अनन्त गुण भरे हैं। वह तो मात्र गुणों का ही पिण्ड है। इसप्रकार इन दोनों का स्वरूप बताकर आचार्य शरीर की रुचि छुड़ाकर आत्मा की रुचि कराते हैं। जिसे अतीन्द्रिय आनन्द की रुचि आये, उसे पर की रुचि नहीं रहती।

जीव की भूल-भुलैयों को गुरु बताते हैं। पर में अपनेपन की बुद्धि करके जीव स्वयं अपने स्वरूप को भूल रहा है। सहजात्म स्वरूप, सहजानन्दी, निज आत्मा का स्वामीपन छोड़कर, जड़ का स्वामीपन करता है - वही मिथ्यादृष्टि का लक्षण है।

पवित्र मन को भी अपवित्र बनावे – ऐसे शरीर को अच्छी-अच्छी वस्तु खिलाना, अच्छे कपड़े पहनाना एवं अनेक जाति की अनुकूलता प्राप्त कराना, उससे क्या लाभ है? यह अपवित्र शरीर सबको अपवित्र बना देता है। शरीर रजकड़ का पिण्ड और तू आनन्द का पिण्ड, दोनों ही भिन्न हैं – ऐसे भान बिना शरीर की अनुकूलता के लिए अनेक उपाय करना सब व्यर्थ है। एक रोग आवे, उसकी दवा करे, वहाँ दूसरा रोग उत्पन्न हो जाता है। कहा जाता है न – ‘एक तरफ सिले तो दूसरी तरह जगह से फटता है’ उसके जैसा यह शरीर है। शरीर के अठारह अंग टेढ़े हैं और भगवान आत्मा आनन्द का कन्द है, शान्ति का पिण्ड है, उससे प्रेम कराने के लिये यह इष्टोपदेश है। भाई ! तेरी नजर में फेर है। जहाँ सुख है वहाँ तू देखता नहीं। जिसमें सुख शान्ति कभी मिलनेवाली नहीं ऐसे शरीरादि में तू सुख की आकांक्षा रखकर बैठा है।

पुद्गल के द्रव्य-गुण और पर्याय तीनों पुद्गल हैं। द्रव्य अर्थात् वस्तु, गुण अर्थात् रंग-गंध आदि, पर्याय अर्थात् नीली, पीली, रूखा, चिकना आदि – ये सभी जड़ हैं। ये जड़ पदार्थ जीव को सुख कहाँ से दे सकते हैं। और अन्त में मरते समय तुझे पछताना पड़ेगा कि सारी जिन्दगी शरीर में अपनापन करके उसकी साज-सम्हाल में व्यर्थ ही गवां दी; परन्तु थोड़ा भी सुख नहीं मिला और मेरे आत्मा का मैंने कुछ नहीं किया। ऐसा पछताना पड़े उसके पहले ही एक बार चेत जा भाई ! चेत जा !! तू तो चैतन्य का स्वामी है – ऐसा हमारा तुझे इष्टोपदेश है।

नारियल में गन्दा पानी डालने पर उसमें से मीठा पानी निकलता है और इस शरीर में मीठा पानी डालने पर पेशाब होकर निकलता है। मोसमी का पानी पीओ और उसका भी पेशाब तैयार हो जाता है। यह अपवित्र और अनेक जाति के रोगों को उत्पन्न करानेवाला शरीर है; परन्तु अज्ञानी जीव उससे प्रेम करना छोड़ता नहीं है। शरीर को नहलाओ, धुलाओ, खिलाओ, पिलाओ – इसमें और इसके लिये पैसा कमाने में अज्ञानी जीव अपने पूरे दिन का समय बरबाद कर देता है। उससे ज्ञानी कहते हैं कि इस अपवित्र शरीर के भोगों के लिये इच्छा करना व्यर्थ है।

यहाँ शिष्य प्रश्न करता है कि हे भगवन ! शरीर तो अपवित्र और विघ्नकारी होने से उस पर तो धन से उपकार नहीं होता, धन से मिलनेवाली समस्त वस्तुओं को शरीर अपवित्र बना देता है और यदि धन खर्च करके एक रोग मिट भी जावे तो कुछ समय में ही दूसरा रोग

उत्पन्न हो जाता है; इसलिये धन से शरीर पर उपकार नहीं हो सकता ह्व यह बात तो ठीक है; परन्तु आत्मा पर तो धन से उपकार होता है न ? दानादि देने से आत्मा को लाभ होता है न ? जैसे उपवास आदि तपश्चरण से आत्मा को लाभ होता है, वैसे ही धन से आत्मा का उपकार होता है।

उससे गुरु कहते हैं कि यदि धन से आत्मा का उपकार होता अर्थात् दान देने से आत्मा को लाभ होता तो निर्धन को रोना पड़ता और धनी धर्मी हो जाता; किन्तु ऐसा नहीं होता है।

आत्मा का ध्यान करने से आत्मा को लाभ होता है और धन का दान करने से भी आत्मा को लाभ होता है – ऐसा मानकर प्रश्न करनेवाले शिष्य को समझाते हुये आचार्यदेव आगामी गाथा कहते हैं।

यज्जीवस्योपकाराय तद्देहस्यापकारकम् ।

यद्देहस्योपकाराय तज्जीवस्यापकारकं ॥१९॥

जो जीव (आत्मा) का उपकार करनेवाले होते हैं, वे शरीर का अपकार (बुरा) करनेवाले होते हैं। जो चीजें शरीर का हित या उपकार करनेवाली होती हैं, वही चीजें आत्मा का अहित करनेवाली होती हैं।

जो आत्मा का उपकार करनेवाला है, वह शरीर का अपकार करनेवाला है। आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान, ध्यान एवं तप करने से आत्मा पर उपकार होता है और उससे ही शरीर का अपकार होता है। तप आदि करने से शरीर गल जाता है। जो चीज शरीर का हित करनेवाली है, उपकार करनेवाली है, जैसे दाल-भात-सब्जी-मिठाई तथा वस्त्र-शृंगार आदि से शरीर का उपकार होता है और उससे आत्मा का अपकार होता है। ‘शरीर का उपकार वह आत्मा का अपकार है और आत्मा का उपकार वह शरीर का अपकार है।’

यहाँ निमित्त से कथन चल रहा है। उपवास नाम ‘उप’ अर्थात् नजदीक और ‘वास’ अर्थात् रहना। तात्पर्य यह हुआ कि आत्मा के समीप रहने से आत्मा को लाभ होता है, शरीर का बराबर ध्यान नहीं रहता, खुराक नहीं मिलती, उससे शरीर का अहित होता है। धनादि शरीर के हित में निमित्त हैं, पैसों से हितकर सामग्री मिलती है, रोग का उपचार होता है, शरीर की शोभा बढ़ावे – ऐसा शृंगार मिलता है, इसलिए पैसों से शरीर का उपकार होता है; परन्तु आत्मा को यह धनादि मिलने से राग और तृष्णा बढ़ती है, जिससे आत्मा का अपकार होता है। लक्ष्मी रखने में भी आत्मा को पाप होता है, उससे भोग भोगने में भी पाप

ही होता है और दानादि में भी अपनेपन की अहंबुद्धि से मिथ्यात्व पुष्ट होता है। इसलिये धन आत्मा को उपकार में नहीं; अपितु अपकार में निमित्त है।

शरीर को भले ही लक्ष्मी से लाभ होता है; परन्तु आत्मा को तो लक्ष्मी के निमित्त से नुकसान ही है। लक्ष्मी से आत्मा को थोड़ा भी लाभ नहीं होता है।

सत् चिदानन्द शुद्ध स्वभाव की दृष्टि करने से आत्मा को लाभ होता है, धन से आत्मा को लाभ नहीं होता। शरीर को जो लाभ में निमित्त है, वह आत्मा को नुकसान में निमित्त है और जो आत्मा को लाभ में निमित्त है वह शरीर को नुकसान में निमित्त है। आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान-ध्यान करने से आत्मा को लाभ होता है और इससे शरीर का ध्यान नहीं रहता, शरीर की फिक्र नहीं रहती, उससे शरीर को अपकार में निमित्त होता है। शरीर में तो ध्यान रखो कि न रखो जैसा होना हो, वैसा ही होता है; परन्तु फिक्र नहीं की और शरीर में प्रतिकूलता आवे तो बेफिक्री शरीर के अहित में निमित्त कहने में आती है।

भाई ! तुम्हारी स्वयं की अविनाशी चीज की तुम्हें ही रुचि नहीं है और नाशवान चीज की रुचि में तू रुक गया है, इसलिये तुम्हारी शरीर आदि के प्रति रुचि छुड़वाने के लिये यह इष्ट उपदेश है।

यह इष्ट उपदेश – प्रिय उपदेश चल रहा है, इसमें 19 वीं गाथा चल रही है। शिष्य का प्रश्न था कि हे प्रभु ! धन से भले ही शरीर को लाभ नहीं है; परन्तु धन से आत्मा को तो लाभ है न ? धन से बहुत अनुकूलताएँ मिलती हैं और अनुकूलता में धर्मसाधन अच्छी तरह से हो सकता है। उस धन से आत्मा का तो उपकार होता ही है साथ ही दान देने से धर्म की प्रभावना भी होती है और धर्म की प्रभावना से आत्मा का हित सिद्ध होता है। तब फिर आप धन से आत्मा का उपकार क्यों नहीं मानते ?

शिष्य के इस प्रश्न के उत्तर में निमित्त का कथन करते हुए आचार्य 19 वीं गाथा में कहते हैं कि जैसे अनशनादि तप आत्मा को ज्ञान-ध्यान-करने के लिए उपकारक हैं। बाहर की खाने-पीने आदि प्रवृत्ति से आत्मा निवृत्त हो तो विशेष ज्ञान-ध्यान की क्रिया हो सकती है, जिससे उसके स्वयं के पुराने और नये पापों का नाश होता है; इसलिए अनशनादि तप जीव को उपकारक हैं और ये तप शरीर को अपकारक हैं; क्योंकि खुराक न मिलने से शरीर शिथिल पड़ जाता है, ज्ञान-ध्यान में विशेष प्रवृत्ति होने से शरीर की अनुकूलता का ध्यान नहीं रहता, उससे तप शरीर को अपकारक होते हैं।

(क्रमशः)

जितभवमभिवन्दे भासुरं श्रीजिनं वा

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार नामक ग्रन्थराज पर मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव ने तात्पर्यवृत्ति नामक अत्यन्त गम्भीर संस्कृत टीका लिखी है।

उक्त संस्कृत टीका के मंगलाचरण के प्रथम श्लोक पर हुए आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

मंगलाचरण

त्वयि सति परमात्मन्मादृशान्मोहमुग्धान्,
कथमतनुवशत्वान्बुद्धकेशान्यजेऽहम् ।

सुगतमगधरं वा वागधीशं शिवं वा,
जितभवमभिवन्दे भासुरं श्रीजिनं वा ॥1॥

हे परमात्मा ! तेरे होते हुये मैं अपने जैसे मोहमुग्ध और कामवश बुद्धादि को क्यों पूजूँ ? जिसने भवों को जीता है मैं तो उसकी वंदना करता हूँ। उसे प्रकाशमान श्रीजिन कहो, सुगत कहो, गिरधर कहो, वागीश्वर कहो या शिव कहो।

इस नियमसार में कितना ही वर्णन तो समयसार से भी अधिक ऊँचा है। टीका में श्री पद्मप्रभमलधारिदेव ने कारणशुद्धपर्याय आदि का अलौकिक वर्णन किया है।

टीकाकार पद्मप्रभमलधारिदेव हैं, वे आचार्य नहीं हैं, मुनि हैं; तो भी टीका में अलौकिक रहस्य प्रगट किया है। अन्तर में आत्मपदार्थ को स्पर्श करके यह अलौकिक बात निकली है। जो पात्र हो उसे ही समझ में आ सकती है।

मंगलाचरण में कहते हैं कि हे परमात्मा ! हे सर्वज्ञ जिन ! आपके इस जगत में होते हुये मैं अपने जैसे मोहमुग्ध और कामवश बुद्धादि को क्यों भजूँ, क्यों पूजूँ ?

मेरे जैसे अर्थात् संसारी जीव। यद्यपि वे संसारी जीव सर्वप्रकार से टीकाकार जैसे नहीं हैं; क्योंकि टीकाकार तो छठे-सातवें गुणस्थान में झूलते मुनि हैं और जिनकी बात करनी है वे तो मिथ्यादृष्टि हैं।

तथापि टीकाकार मुनिराज ने विनयवश ऐसा कहा है। जो आत्मस्वरूप के वश नहीं हैं, वे काम के वश वर्तते हैं। भले बाह्य में स्त्री आदि के त्यागी हों तो भी जो आत्मा के वश नहीं वे काम के ही वश हैं। मोहमुग्ध और कामवश कहकर मिथ्यादर्शन और मिथ्याचारित्र को इंगित किया है। जो राग और निमित्त को भला कहते हैं और चैतन्य की पूर्णता की प्रतीति नहीं करते वे सब भले ही देव कहे जाते हों तो भी वे मोहमुग्ध और कामवश हैं, पूज्य नहीं।

अन्तर में परमात्मस्वभाव का जिनको भान नहीं और जो मोहमुग्ध हैं, ऐसे लौकिक देवों को मैं कैसे पूजूँ ? हे नाथ ! आपने ही भवों को जीता है। अन्तर में चैतन्यस्वभाव का भान करके जिसने भवों को जीत लिया ऐसे परमात्मा ही पूज्य हैं।

हे नाथ ! भव तो एक समय जितना ही विकृतभाव था और ध्रुवस्वभाव का भान करके आपने उस भव के बीज का नाश किया तथा भव के अभाव का भाव प्रगट किया; अतः आप ही हमारे पूज्य हो। मोक्ष होने के पश्चात् भी फिर से जगत् का उद्धार करने के लिये अवतार लेना पड़े - ऐसा जो मानते हैं उन्होंने वास्तव में भवों को जीता ही नहीं। अपने पूर्ण स्वभाव की प्रतीति और आदर करनेवाला मैं उसी का आदर करता हूँ, जिसकी पूर्ण परमात्मदशा प्रगट हो गई है। जिसको भवरहित निरपेक्ष आत्मस्वभाव की खबर नहीं उसकी मैं वन्दना नहीं करता। मैं तो भव को जीतनेवाले मार्ग का पथिक हूँ, भव के अभावरूप स्वभाव का मुझे भान हुआ है, अब मेरे अधिक भव रहे नहीं, एकाध भव होगा भी तो वह टलनेके लिये है; इसलिये जिन्होंने भवों को जीता है, उन्हें ही मैं नमस्कार करता हूँ।

जिसे एक भी शुभराग का आदर है उसको अनन्त भव का आदर है। जिसको स्वभाव का बहुमान है, उसको भव का या राग का आदर नहीं होता। अहो ! जिसके स्वभाव में से भव गया सो गया फिर दुबारा अवतार नहीं होता, ऐसे जिनराज को मैं नमन करता हूँ। यहाँ नमस्कार का जो विकल्प है, उसका आदर नहीं है; किन्तु परमात्मदशा का आदर है। भव के अभाव का डंका पीटा है।

भव के अभावस्वभाव को प्राप्त परमात्मा की वाणी का हमने परीक्षापूर्वक निर्णय किया है; अतः ऐसे परमात्मा को ही नमन करते हैं। उस परमात्मा को चाहे श्री जिन कहो, सुगत कहो, गिरधर कहो, वागीश्वर या शिव कहो, कुछ भी नाम से कहो, उसे हम नमस्कार करते हैं।

बुद्ध को सुगत कहा जाता है। सुगत अर्थात् (1) शोभनीकता को प्राप्त अथवा (2) सम्पूर्णता को प्राप्त। श्री जिनभगवान मोह-राग-द्वेष के अभाव के कारण शोभनीकता को प्राप्त हैं और केवलज्ञानादि को प्राप्त कर लिया है; इसलिये सम्पूर्णता को प्राप्त हैं; अतः उन्हीं को यहाँ सुगत कहा गया है। हे नाथ ! जो रागी-द्वेषी है वह शोभनीक नहीं; आप ही मोह-राग-द्वेष रहित होने से शोभनीक हो और आप ही केवलज्ञान को प्राप्त होने से सुगत हो। आपके अतिरिक्त अन्य कोई वन्दनीय नहीं। आपके मोहादि का अभाव है और केवलज्ञानादि का सद्भाव है ऐसा कहकर अस्ति-नास्ति से वर्णन किया है। हे भगवान ! आपने भव का नाश किया है और ज्ञानमूर्ति आत्मा रहा है; अतः आप ही जिन हो, आप ही पूज्य हो, आपके अलावा अन्य रागी-द्वेषी-मोही को हम नहीं मानते हैं।

श्रीकृष्ण को गिरधर अर्थात् पर्वत को धारण करनेवाले कहा जाता है। यहाँ श्री जिनराज को अनन्तवीर्यवान होने से गिरधर कहा गया है। स्वरूप रचना की सामर्थ्य रूप वीर्य से जिन्होंने अखण्ड आत्मा को धारण कर रखा है, वे ही सच्चे गिरधर हैं। अनन्त गुण के पहाड़रूप सम्पूर्ण आत्मा को आपने धारण किया है; इसलिये आप ही गिरधर हो।

ब्रह्मा अथवा बृहस्पति को वागीश्वर अर्थात् वाणी का अधिपति कहा जाता है। श्री जिन भगवान दिव्यवाणी के प्रकाशक होने से उन्हीं को यहाँ वागीश्वर कहा गया है। इसमें वाक् एवं ईश्वर दो शब्द हैं अर्थात् वाणी का ईश्वर, केवलज्ञान होने पर भगवान के दिव्यध्वनि होती है, वैसी वाणी दूसरों की नहीं होती; अतः भगवान को वाणी का ईश्वर कहा गया है।

बुद्ध, विष्णु, ब्रह्मा और महेश इन चारों के समक्ष भगवान को सुगत, गिरधर, वागीश्वर और शिव की उपमा दी गई है। महेश को (शंकर को) शिव कहा जाता है। श्री जिन भगवान कल्याण स्वरूप होने से उन्हें यहाँ शिव कहा गया है।

हे कल्याणस्वरूप भगवान ! आपका आत्मा भवरहित हो गया है; अतः आप ही शिव हैं। हे नाथ ! आपही पूर्ण हो और आपकी ही वाणी में परिपूर्ण कहने की शक्ति है। आपके अलावा जो जगत् के बुद्धादि हैं, वे तो मोहमुग्ध और कामवश हैं; अतः पूज्य नहीं हैं। आप सर्वज्ञ परमात्मपद को प्राप्त और भवजित हो; इसलिये आप ही पूज्य हो।

ऐसे परमात्मा को हम स्वीकार करते हैं अर्थात् हमारे आत्मा का ऐसा स्वभाव ही हमें आदरणीय है, अन्य रागादिक आदरणीय नहीं; ऐसा कहकर मांगलिक किया उसमें सर्वज्ञ देव को नमस्कार आ गया।

(क्रमशः)

समयसार परिशिष्ट प्रवचन

शक्तियों का संग्रहालय : भगवान आत्मा

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम समयसार नामक ग्रन्थाधिराज पर परमपूज्य आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने 'आत्मख्याति' नामक संस्कृत टीका लिखी है, उसके अन्त में परिशिष्ट के रूप में अनेकान्त का विस्तृत वर्णन करते हुये आत्मा की 47 शक्तियों का वर्णन किया है &

उन पर आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी ने समय-समय पर अतिमहत्त्वपूर्ण प्रवचन किये हैं, जो पाठकों के लाभार्थ क्रमशः प्रस्तुत हैं।

(गतांक से आगे)

ऐसे परसंबंध से रहित शुद्ध आत्मा को देखना ही धर्म है, वही जैनशासन है। आचार्य कुन्दकुन्द प्रभु कहते हैं कि - जो पुरुष आत्मा को अबद्ध-स्पृष्ट (अर्थात् कर्मबन्धन रहित तथा सम्बन्ध रहित) अनन्य, अविशेष तथा नियत देखता है; वह सर्व जिनशासन को देखता है; 'जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्टं अणणयं णियदं' जो यह अबद्ध-स्पृष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष और असंयुक्त - ऐसे पाँच भावों स्वरूप आत्मा की अनुभूति है वह निश्चय से समस्त जिनशासन की अनुभूति है। देखो, आचार्य भगवान स्पष्ट कहते हैं कि - पर के संबंध रहित शुद्ध आत्मा की अनुभूति ही जैनधर्म है। वास्तव में आत्मा का स्वभाव राग के भी संबंध से रहित है। जो जीव अपने आत्मा को कर्म के संबंध से रहित तथा रागादि रहित ऐसे अपने शुद्धस्वभाव को नहीं देखता उसने जिनशासन को नहीं जाना है और उसके आत्मा में जैनधर्म प्रगट नहीं हुआ है। ज्ञान-दर्शनस्वभाव ही मैं हूँ तथा ज्ञान-दर्शन स्वभाव में एकत्वरूप से तथा अन्य समस्त पदार्थों के विविक्तरूप से अपने आत्मा का अनुभव करना सो जैनधर्म है। ऐसे आत्मा को जाने बिना सचमुच जैनत्व नहीं होता।

इस जगत में मेरा क्या है और किसके साथ मेरा परमार्थ संबंध है ? इसके भान बिना, पर को ही अपना मानकर जीव संसार में भटक रहा है। परद्रव्य कभी अपना हो ही नहीं सकता; तथापि पर को अपना मानकर जीव मोह के कारण दुःखी होता है। जो पर को पररूप जाने और स्व को ही स्वरूप से जाने वह निःशंकरूप से अपने स्वरूप में एकाग्रता से सुखी ही होगा।

24 ● मई, 2003

//////////////////////////////////// (6)

दुःख का मूल परद्रव्य को अपना मानना है। सुख का मूल स्व-पर का भेदज्ञान करना है। कहा भी है -

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।

तस्यैवाभावतो बद्धाः बद्धाः ये किल केचन॥

जो जीव सिद्ध हुए हैं वे भेदज्ञान से ही सिद्ध हुए हैं; जो जीव बद्ध हुए हैं वे भेदज्ञान के अभाव से ही बद्ध हुए हैं।

भेदज्ञान का वर्णन चल रहा है। आत्मा के ज्ञान-दर्शन स्वभाव के अतिरिक्त अन्य कहीं भी स्वामित्व मानना भेदज्ञान नहीं; किन्तु अज्ञान है।

धर्मी अपने आत्मा को कैसा ध्याते हैं - ये बात प्रवचनसार के अनुसार कहते हैं -
गाहं होमि परेसिं ण मे परे संति णाणमहमेक्को।

इदि जो झायदि झाणे सो अप्पाणं हवदि झादा॥191॥

'मैं पर का नहीं हूँ, पर मेरे नहीं हैं' - इसप्रकार स्व-पर के परस्पर स्व-स्वामित्व संबंध को छोड़कर, 'शुद्धज्ञान ही एक मैं हूँ' - इसप्रकार अनात्मा को छोड़कर एक आत्मा को ही अग्र करता है। ध्येय में चिन्तन को रोकता है। वह आत्मा वास्तव में शुद्धात्मा होता है। 'देखो, धर्मी जीव अपने आत्मा में से परद्रव्य के संबंध को हटा देता है और एक शुद्ध ज्ञानस्वरूप से ही अपने आत्मा को ध्याता है। 'प्रथम तो मैं स्वभाव से ज्ञायक ही हूँ; मात्रा ज्ञायक होने से मेरा विश्व के साथ भी सहज ज्ञेय-ज्ञायक लक्षण संबंध ही है; परन्तु अन्य स्वस्वामित्वलक्षणादि संबंध नहीं है; इसलिए मुझे किसी के प्रति ममत्व नहीं है, सर्वत्रा निर्ममत्व ही है।' मोक्षाधिकारी जीव ऐसे ज्ञायकस्वभावी आत्मा का निर्णय करके सर्व उद्यम से अपने शुद्धात्मा में ही वर्तता है। (देखो, प्रवचनसार गाथा 200 टीका)।

जो जीव पर के साथ कर्ता-कर्मपना, स्व-स्वामिपना आदि संबंध किंचित् भी माने, वह जीव पर का ममत्व छोड़कर अपने ज्ञायकस्वभाव में प्रवर्तमान नहीं हो सकता, वह तो राग-द्वेष-मोह में ही वर्तता है; वह वास्तव में मोक्ष का अधिकारी नहीं है।

धर्मी जानता है कि मैं तो ज्ञान-दर्शन स्वभावी आत्मा हूँ; ज्ञान-दर्शन स्वभाव ही मेरा स्व है और उसी का मैं स्वामी हूँ; इसके अतिरिक्त अन्य किसी का मैं स्वामी नहीं हूँ तथा अन्य कोई मेरा स्वामी नहीं है। यह कुटुम्ब-स्त्री-धन-शरीर कोई मेरा स्व नहीं है और मैं उनका स्वामी नहीं हूँ, नियमसार गाथा की टीका में कहते हैं कि - यह स्त्री-पुत्रादिक कोई तेरे सुख-दुःख के भागीदार नहीं होते;

//////////////////////////////////// वीतराग-विज्ञान ● 25

यदि तू उन्हें अपना मानेगा तो ठगा जायेगा। ये स्त्री-पुत्रादि कोई वास्तव में इस आत्मा के संबंधी नहीं हैं। तीर्थकर भगवान आदि आराधक जीव माता के गर्भ में हों उस समय भी अपने आत्मा को ऐसा ही मानते हैं; पर के साथ किंचित् संबंध नहीं मानते। समयसार गाथा 207, 208 एवं टीका में कहा है -

को णाम भणिज्ज बुहो परदव्वं मम इमं हवदि दव्वं।
अप्पाणमप्पणो परिगहं तु णियदं वियाणंतो।।207
मज्झं परिग्गहो जदि तदो अहमजीवदं तु गच्छेज्ज।
णादेव अहं जम्हा तम्हा ण परिग्गहो मज्झ।।208।।

'जो जिसका स्वभाव है वह उसका स्व (धन-सम्पत्ति) है और वह उसका (स्वभाव का) स्वामी है - इसप्रकार सूक्ष्म तीक्ष्ण तत्त्वदृष्टि के अवलम्बन से ज्ञानी अपने आत्मा को ही आत्मा का परिग्रह नियम से जानता है; इसलिए 'यह मेरा स्व नहीं है, मैं इसका स्वामी नहीं हूँ' - ऐसा जानता हुआ परद्रव्य का परिग्रहण नहीं करता।

पुनश्च, ज्ञानी कहते हैं कि - 'यदि मैं अजीव परद्रव्य का परिग्रहण करूँ तो अवश्यमेव वह अजीव मेरा स्व हो; मैं भी अवश्यमेव उस अजीव का स्वामी होऊँ और अजीव का जो स्वामी वह वास्तव में अजीव ही होता है। इसप्रकार विवश (लाचारी से) भी मुझे अजीवपना आ जायेगा। मेरा तो एक ज्ञायकभाव ही स्व है और उसी का मैं स्वामी हूँ; इसलिए मुझे अजीवपना न हो; मैं तो ज्ञाता ही रहूँगा; परद्रव्य का परिग्रहण नहीं करूँगा।

आठ वर्ष की बालिका भी यदि सम्यक्त्व प्राप्त कर ले तो वह भी अपने आत्मा को ऐसा ही जानती है। फिर बड़ी होने पर उसका विवाह हो तब भी अपने अन्तर अभिप्राय में अपने ज्ञायकस्वभावी आत्मा के सिवा अन्य किसी को वह अपना स्वामी नहीं मानती और यदि पति धर्मात्मा हो तो वह भी ऐसा नहीं मानता कि 'मैं इस स्त्री का स्वामी हूँ', मैं अपने ज्ञान का ही स्वामी हूँ - ऐसा धर्मी जानता है। पति-पत्नी के रूप में एक-दूसरे के प्रति जो राग है उसे वे अपने दोषरूप मानते हैं और ज्ञायकस्वभाव में उस राग का स्वामित्व भी स्वीकार नहीं करते। हमारे ज्ञायकस्वभाव के आश्रय से जो सम्यग्दर्शनादि भाव प्रगट हुए हैं वही हमारा स्व है और उसी के हम स्वामी हैं; - इसप्रकार मात्रा अपने स्वभाव में ही स्व-स्वामिपना जानते हैं। इसके अतिरिक्त शरीर या रागादि के साथ स्व-स्वामिपना नहीं मानते। (क्रमशः)

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : ज्ञानी को राग तो होता है, फिर भी उसे वैरागी क्यों कहते हैं?

उत्तर : प्रथम तो ज्ञानी को परमार्थ से राग होता ही नहीं; क्योंकि राग के समय ज्ञानी जानता है कि मैं तो ज्ञान हूँ, मेरा आत्मा ज्ञानमय है - रागमय नहीं है, राग मेरे ज्ञान से भिन्न है। इसके अतिरिक्त ज्ञानी को उस राग की रुचि नहीं है। राग मुझे हितकर है - ऐसा ज्ञानी नहीं मानता। स्वभावसन्मुख-दृष्टि उस समय भी छूटी नहीं है और राग में एकत्वबुद्धि हुई नहीं है; इसलिये ज्ञानी वास्तव में वैरागी ही है। अज्ञानी तो अकेले राग को ही देखता है; परन्तु उसी समय ज्ञानी का ज्ञान उस राग से भिन्न पड़कर अन्तरस्वभाव में एकाकारपने परिणम रहा है, उसे अज्ञानी नहीं पहचानता।

प्रश्न : क्या आत्मा की पहचान होते ही वीतराग हो जाता है?

उत्तर : श्रद्धा अपेक्षा तो वीतराग है। ज्ञानी को अस्थिरता के कारण राग-द्वेष होता है, वह यद्यपि उसके ही पुरुषार्थ का दोष है; तथापि वह उसे और पुरुषार्थ के दोष को अपने स्वभाव में नहीं मानता। ज्ञानी को तो रागरहित ज्ञान स्वभाव में ही एकत्वबुद्धि है, राग में नहीं। स्वभाव में एकत्वबुद्धि के कारण वास्तव में राग टूटता ही जाता है और स्वभाव की एकाग्रता बढ़ती जाती है; इसलिए ज्ञानी को परमार्थ से राग होता ही नहीं, अपने स्वभाव की एकता ही होती है। इसप्रकार जो राग होता है, वह स्वभाव की एकता में न आकर मात्र ज्ञेयरूप ही रह जाता है। राग के समय भी स्वभाव की अधिकता के कारण ज्ञानी को स्वभाव ही होता है, राग नहीं होता - ऐसी धर्मी जीव की दशा है।

प्रश्न : सम्यग्दर्शन होने पर ज्ञानी जीव तुरन्त ही मुनि क्यों नहीं बन जाते?

उत्तर : आत्मार्थी हठ नहीं करते अर्थात् तुरन्त ही कार्य हो जाने की आकुलता नहीं करते। स्वभाव में हठ काम नहीं आती। मार्ग तो सहज है; हठ से, उतावली से, अधैर्य से मार्ग उपलब्ध नहीं होता। सहज मार्ग पर पहुँचने के लिए धैर्य और विवेक अपेक्षित है। ऋषभदेव भगवान जैसे महान पुरुष को 83 लाख पूर्व तक चारित्रदशा - मुनिदशा नहीं हुई और भरत चक्रवर्ती जैसे को भी 77 लाख पूर्व राज्यपद और 6 लाख पूर्व चक्रीपद रहा। यह

जानते थे कि अंतरंग में डुबकी लगानेरूप एकाग्रता के चारित्र का पुरुषार्थ अभी नहीं है; इसलिये हठ नहीं करते थे। कुछ जीवों को ऐसा लगता है कि सम्यग्दर्शन होने पर चारित्र धारण नहीं किया तो वह सम्यग्दर्शन किस काम का? किन्तु भाई! अन्तर स्वभाव में हठ काम नहीं आता, सहज पुरुषार्थ से अन्तर रमणता होती है। यह बात विवेक विचारसहित वस्तुस्वभाव ध्यान में रखकर समझने जैसी है।

प्रश्न : सम्यग्दर्शन होने के बाद तो साधु-सन्यासी बनना पड़ता है न?

उत्तर : सम्यग्दर्शन प्रथम करे, पश्चात् साधु कैसे होते हैं - इसकी खबर पड़े। सम्यग्दर्शन के बाद अंतरंग में आनंद की धारा प्रवाहित होने लगती है, अतीन्द्रिय आनन्द आने लगता है। जैसे समुद्र में पानी की भरती आती है; उसीप्रकार मुनिदशा में अन्दर आनन्द की भरती आती है। उसी का नाम मुनिदशा है।

प्रश्न : सम्यग्दृष्टि सप्तभय रहित होता है; किन्तु मुनि तो कहते हैं कि हम भय से डरते हैं - इसका क्या अभिप्राय है?

उत्तर : यह तो चतुर्गति के भय का भय लगा है अर्थात् भय के कारणरूप भाव से डरकर भवरहित भगवान की ओर अन्तर्मुख जाना चाहते हैं - इसलिए ऐसा कहते हैं। वास्तव में उन्हें बाह्य सामग्री का भय नहीं है।

प्रश्न : चतुर्थ गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि के तो भय होता दिखाई पड़ता है और वह उसका उपाय भी करता है, फिर वह निर्भय कैसे?

उत्तर : सम्यग्दृष्टि अन्तर में तो निर्भय ही है, बाह्य में भयप्रकृति में जुड़ान होने से अस्थिरता का किंचित् भय दृष्टिगोचर है; तथापि वह अन्तरस्वरूप में तो निर्भय ही है; अतः सप्तभय से रहित निर्भय है।

प्रश्न : सीताजी और अंजनाजी वन में छोड़ते समय भयभीत तो थीं ही?

उत्तर : यह तो पति का आधार छूटने पर अस्थिरता के कारण किंचित् बाह्य में रुदन दिखाई दिया था, तो भी अन्दर में अपना आधार निजचैतन्यस्वभाव ही है - ऐसा जानकर रुदन आदि भय के भाव की कर्ता नहीं थीं; अपितु निर्भय और ज्ञाता ही थीं। प्लेग आदि किसी भयानक रोग का गाँव में प्रसंग हो तो किंचित् अस्थिरता और भय के कारण सम्यग्दृष्टि गाँव को छोड़कर ग्रामेतर जाने आदि का उपाय भी करता है; परन्तु वह अन्दर में स्वभावदृष्टि के जोर की मुख्यता से निर्भय है तथा साथ ही ज्ञान है, वह पर्याय के राग के कण-कण को जैसा है; वैसा जानता है। इसी को अनेकान्त का सच्चा ज्ञान कहते हैं।

28 ● मई, 2003

समाचार दर्शन -

वेदी शिलान्यास महोत्सव सानन्द सम्पन्न

द्रोणगिरि (म. प्र.) बुन्देलखण्ड में लघु सम्मेलनशिखर के नाम से विख्यात सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि में श्री गुरुदत्त कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट द्वारा निर्माणाधीन सिद्धायतन संकुल में बनने जा रहे विद्यमान बीस तीर्थंकर जिनालय की वेदी का शिलान्यास महोत्सव दिनांक 7 मार्च से 9 मार्च 2003 तक सानन्द सम्पन्न हुआ।

इस अवसर पर श्री छोटेलाल ऋषभकुमारजी जैन कर्रापुर परिवार की ओर से सिद्धपरमेष्ठी विधान का आयोजन किया गया। इसी के अन्तर्गत 'छहढाला: एक अनुशीलन' विषय पर द्विदिवसीय एक गोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमें ब्र. जतीशचंदजी शास्त्री सनावद, पण्डित अभयकुमारजी जैनदर्शनाचार्य छिन्दवाड़ा, ब्र. धन्यकुमारजी बैलोकर गजपंथा, पण्डित राजकुमारजी शास्त्री बाँसवाड़ा, पण्डित पीयूषकुमारजी शास्त्री जयपुर आदि विद्वानों ने भाग लिया। संचालन पण्डित अरुणकुमारजी शास्त्री बड़ामलहरा ने किया।

कार्यक्रम के अन्तिम दिन श्री अनन्तभाई अमोलकचंदजी सेठ मुम्बई के मुख्य आतिथ्य में शिलान्यास सभा का आयोजन किया गया। अध्यक्षता श्री सुखदयालजी डेवड़िया केसली ने की।

प्रथम तल पर बीस तीर्थंकर जिनालय की वेदी का शिलान्यास श्री निहालचंदजी ओसवाल जयपुर तथा श्री महीपालजी शाह ज्ञायक बाँसवाड़ा ने और द्वितीय तल पर गुरुदत्त जिनालय की वेदी का शिलान्यास श्री धन्यकुमारजी सिंघई छिन्दवाड़ा एवं श्री उत्तमचंद संजयकुमारजी मोदी शाहगढ़ ने किया।

विधि-विधान के सम्पूर्ण कार्य ब्र. जतीशचंदजी शास्त्री सनावद के निर्देशन में सुबोधकुमारजी शाहगढ़ द्वारा सम्पन्न कराये गये।

भक्तामर मण्डल विधान सम्पन्न

जयपुर : आद्य तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के जन्मकल्याणक एवं दीक्षाकल्याणक के पावन अवसर पर बुधवार, दिनांक 26 मार्च 2003 को श्री टोडरमल स्मारक भवन में श्री चांदमलजी जैन एवं श्री डी. आर. जैन के सहयोग से श्री भक्तामर मण्डल विधान का भव्य आयोजन किया गया।

विधि-विधान के सम्पूर्ण कार्य पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील के निर्देशन में पण्डित ऋषभकुमारजी शास्त्री ललितपुर, पण्डित चिन्मयकुमारजी शास्त्री पिड़ावा एवं उपाध्याय कनिष्ठ के विद्यार्थियों ने सम्पन्न कराये।

विधान में लगभग 500 मुमुक्षुओं ने भाग लिया। इस अवसर पर प्राप्त दान राशि को अकाल पीड़ितों की सहायतार्थ भेजी जायेगी।

वीतराग-विज्ञान ● 29

अष्टान्हिका पर्व सानन्द सम्पन्न

1. जयपुर : यहाँ श्री टोडरमल स्मारक भवन में श्री दि. जैन महिला मण्डल, बापूनगर ने तत्त्वार्थसूत्र मण्डल विधान का आयोजन किया।

इस अवसर पर पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील के प्रातः समयसार पर, दोपहर में पण्डित पूनमचन्दजी छाबड़ा द्वारा तत्त्वचर्चा तथा सायंकाल पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचन के पश्चात् डॉ. दीपकजी जैन के नाटक समयसार पर मार्मिक प्रवचन हुये। प्रतिदिन सायंकाल महाविद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा जिनेन्द्र भक्ति होती थी।

विधि-विधान के सम्पूर्ण कार्य पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील के निर्देशन में उपाध्याय कनिष्ठ के विद्यार्थियों ने सम्पन्न कराये।

2. जबेरी बाजार (मुम्बई) - यहाँ सीमंधर जिनालय में समाज के विशेष आग्रह पर दिनांक 11 से 20 मार्च तक करणानुयोग के विशेषज्ञ ब्र. यशपालजी जैन जयपुर के प्रातः एवं सायंकाल गुणस्थान विषय पर अध्यात्म से परिपूर्ण मार्मिक प्रवचन हुये। साथ ही प्रातःकाल प्रवचन के उपरान्त इसी विषय पर कक्षा भी ली गई।

ज्ञातव्य है कि इसी बीच अध्यात्म स्टडी सर्किल के विशेष आमंत्रण पर दिनांक 16 मार्च को आपका एक प्रवचन बालकेश्वर में तथा ताड़देव निवासी जैनसमाज के आग्रह पर 'पाप, पुण्य और धर्म' विषय पर आपका एक प्रवचन 19 मार्च को जैन बोर्डिंग ताड़देव में भी हुआ।

जबेरी बाजार के अतिरिक्त श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल बृहन्मुम्बई के संयोजकत्व में - **दादर** में पण्डित प्रदीपकुमारजी झांझरी उज्जैन, **बोरीवली** में ब्र. हेमचन्दजी 'हेम' भोपाल, **दहीसर** में पण्डित चन्द्रभाई फतेपुर, **घाटकोपर** में पण्डित कमलचन्दजी पिडावा, **मलाड़** में पण्डित देवेन्द्रकुमारजी बिजौलिया एवं श्री अश्विनभाई, **भायंदर** में श्री बी. एल. जैन कोटा के प्रवचनों एवं कक्षाओं का लाभ समाज को मिला।

साहित्य प्रतिभा उपाधि से सम्मानित

श्री टोडरमल दि. जैन सि. महाविद्यालय, जयपुर के स्नातक छात्र प्रमोद जैन शास्त्री, शाहगढ़ ने राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, त्रिचूर (केरल) में आयोजित कविता रचना (संस्कृत), निबन्ध रचना (संस्कृत), प्रश्नोत्तरी (संस्कृत), कविता रचना (हिन्दी), कथा रचना (हिन्दी), काव्य परायण (हिन्दी) तथा तात्कालिक भाषण (हिन्दी) - इन 7 में प्रथम, तात्कालिक भाषण (अंग्रेजी) प्रतियोगिता में द्वितीय तथा तात्कालिक भाषण (संस्कृत) एवं अन्ताक्षरी में तृतीय स्थान प्राप्त किया। ऐसी बहुमुखी प्रतिभा को देखकर संस्थान ने इन्हें साहित्य प्रतिभा की उपाधि प्रदान कर सम्मानित किया है।

श्री टोडरमल स्मारक परिवार की ओर से आपको हार्दिक बधाई !

दिल्ली में धर्मप्रभावना

शाहदरा (दिल्ली) : यहाँ श्री शांतिनाथ दिगम्बर जिनमंदिर, शिवाजी पार्क में जयपुर से पधारे ब्र. यशपालजी जैन के दिनांक 28 मार्च से 10 अप्रैल 2003 तक प्रातः एवं सायं दोनों समय गुणस्थान विवेचन पर मार्मिक प्रवचन हुए। साथ ही दोपहर में गुणस्थान विवेचन पर हुई तत्त्वचर्चा का लाभ समाज को मिला।

इतने दिनों में मात्र कर्म की दस अवस्थाओं, तीन गुणस्थान तथा श्रावक एवं मुनि के सामान्य स्वरूप पर ही चर्चा हो सकी। आगे के विषय के संबन्ध में पुनः आग्रह पूर्वक आमन्त्रित किया है।

ज्ञातव्य ही है कि यहाँ दिल्ली के उपनगरों के अतिरिक्त बड़ौत एवं कांदला आदि स्थानों से आकर लोगों ने प्रवचनों का लाभ लिया।

इसीसमय समाज के विशेष आग्रह पर अपना एक प्रवचन गुलाब-वाटिका दिगम्बर जैनमंदिर में तथा एक प्रवचन दिगम्बर जैन मंदिर खेकड़ा में भी हुआ।

पंचमेरु नन्दीश्वर विधान सानन्द सम्पन्न

देवलाली : यहाँ पूज्यश्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट देवलाली में श्रीमती कनकमालाबेन जयकुमारजी जैन (दिल्ली वाले) सोनगढ़ की तरफ से दिनांक 11 मार्च से 18 मार्च 2003 तक श्री पंचमेरु नन्दीश्वर विधान का आयोजन किया गया। जिसमें अनेक विद्वानों का लाभ समाज को मिला।

इस अवसर पर परमागम मंदिर में विधान के पश्चात् पूज्यगुरुदेवश्री के सी. डी. प्रवचन एवं अनेक विद्वानों के प्रवचन हुये। दोपहर में पहला प्रवचन पण्डित श्री दिनेशभाई शहा एवं दूसरा प्रवचन पण्डित श्री अभयकुमारजी शास्त्री का होता था।

सायं भक्ति के पश्चात् प्रतिदिन डॉ. उज्वलाबेन की कक्षा चलती थी। सायंकालीन प्रवचनों में पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री छिन्दवाड़ा, ब्र. अभिनन्दनकुमारजी शास्त्री खनियांधाना, ब्र. जतीशचंदजी शास्त्री सनावद के प्रवचनों का लाभ समाज को मिला।

इसी अवसर पर दिनांक 14 मार्च को ब्र. शांताबेन की 84 वीं जन्मजयन्ती मनाई गई, जिसमें ब्र. धन्यकुमारजी बैलोकर, श्री कान्तिभाई मोटानी, श्री सुमनभाई दोषी, ब्र. रमाबेन पारेख तथा श्री मुकुन्दभाई खारा ने श्रद्धा-सुमन अर्पण कर गुणानुवादरूप वक्तव्य दिया।

- मनीष जैन, रहली

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा संचालित

37 वाँ शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर, टोडरमल स्मारक, जयपुर में

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी की प्रेरणा से निर्मित पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर द्वारा संचालित प्रशिक्षण शिविरों की शृंखला में 37 वाँ श्री वीतराग-विज्ञान आध्यात्मिक शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर इस वर्ष रविवार, दिनांक 11 मई से बुधवार, 28 मई 2003 तक श्री टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर में ही होना निश्चित हुआ है।

इस शिविर में मुख्यरूप से धार्मिक अध्ययन करानेवाले बन्धुओं (अध्यापकों) एवं मुमुक्षु भाईयों को शिक्षण-विधि में प्रशिक्षित किया जायेगा।

इस अवसर पर डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल जयपुर, डॉ. उत्तमचन्दजी जैन सिवनी, पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल जयपुर, ब्र. यशपालजी जैन बेलगांव, पण्डित पूनमचन्दजी छाबड़ा इन्दौर, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री छिन्दवाड़ा, पण्डित वीरेन्द्रकुमारजी जैन आगरा, पण्डित शैलेशकुमारजी शाह तलोद, पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील जयपुर, पण्डित दिनेशभाई शहा मुम्बई, पण्डित अशोककुमारजी लुहाड़िया अलीगढ़, पण्डित संजीवकुमारजी गोधा जयपुर इत्यादि विद्वानों के अतिरिक्त शिक्षण-प्रशिक्षण में सहयोग देनेवाले अनेक विद्वान अध्यापक भी पधारेंगे।

शिविर ब्र.जतीशचन्दजी शास्त्री के निर्देशन में संचालित होगा।

इस अवसर पर समागत विद्वानों के प्रवचनों का लाभ तो प्राप्त होगा ही, साथ में बालकों, प्रौढ़ों और महिलाओं के लिये शिक्षण-कक्षाओं की भी व्यवस्था रहेगी।

बालबोध-प्रशिक्षण में प्रवेश पाने के लिये बालबोध पाठमाला भाग - 1, 2, 3 की तथा प्रवेशिका-प्रशिक्षण में प्रवेश पाने के लिये वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग - 1, 2, 3 की प्रवेश प्रतियोगितात्मक लिखित परीक्षा दिनांक 10 मई को दोपहर 2 बजे जयपुर में ली जावेगी, जिसमें प्रथम श्रेणी के अंक प्राप्त करना आवश्यक होगा। अतः प्रवेशार्थी उक्त पुस्तकों की पूरी तैयारी करके आवें।

ध्यान रहे, प्रवेशिका प्रशिक्षण में उन्हें ही प्रवेश दिया जायेगा, जो बालबोध प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके हैं।

आपके यहाँ से कितने व कौन-कौन भाई-बहिन शिविर में पधार रहे हैं, इसकी सूचना निम्नांकित पते पर अवश्य भेज दें; ताकि उनके ठहरने एवं भोजनादि की समुचित व्यवस्था की जा सके।

शिविर के पत्र-व्यवहार का पता -

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

महामंत्री, पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट,

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)

फोन - (0141) 2705581, 2707458 फैक्स - 2704127